RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-1, दिसम्बर 2022 जनवरी फरवरी 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 1 दिसम्बर-2022, जनवरी-फरवरी-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

आर्य समाज का शुद्धिकरण आंदोलन और महात्मा गांधी

डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 1875 में स्थापित आर्य समाज ने हिंदू धर्म को उसके वैदिक, तर्कसंगत और शुद्ध स्वरूप में लौटाने का लक्ष्य अपनाया। उस समय हिंदू समाज में व्याप्त मूर्ति-पूजा, पशु-बलि, अस्पृश्यता, कर्मकांड, जातिगत कठोरता और अन्य सामाजिक प्रथाओं को उसने अवैदिक बताते हुए अस्वीकार किया। ईसाई मिशनरियों की आलोचनाओं और सामाजिक चुनौतियों के बीच आर्य समाज ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा देकर हिंदू समाज में आत्मविश्वास जगाया। शुद्धि आंदोलन इसी व्यापक प्रयास का हिस्सा था, जिसका उद्देश्य हिंदुओं को पुनः संगठित करना और धर्म को उसकी कल्पित मूल अवस्था में स्थापित करना था।

इसके विपरीत, महात्मा गाँधी का सुधार-दर्शन अतीत की पुर्नस्थापना पर नहीं, बल्कि नैतिक आत्मपरिवर्तन और मानवता की समानता पर आधारित था। गाँधी ने अस्पृश्यता, जातिभेद, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया, परंतु उनका तरीका प्रेम, अहिंसा, संवाद और आत्मशोधन के मार्ग से चलता था। उनकी रणनीति समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही—कभी असहयोग और सत्याग्रह, तो कभी रचनात्मक कार्यक्रम, ग्राम-स्वराज, खादी और हरिजन-सेवा उनके कार्यों का केंद्र रहे।

जहाँ आर्य समाज सुधार को 'धर्म के शुद्धिकरण' से जोड़ता था, वहीं गाँधी सुधार को 'मानव-कल्याण और नैतिक उत्थान' की व्यापक प्रक्रिया मानते थे। आर्य समाज का दृष्टिकोण पुनरुत्थानवादी था, जबकि गाँधी का दृष्टिकोण वर्तमान की चुनौतियों के अनुसार विकसित होने वाला, लचीला और व्यापक मानवीय आधार पर टिका था।

संस्कृत परंपरा में 'शुद्धिकरण' शब्द सामान्यतः उस अवस्था या प्रक्रिया को व्यक्त करता है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अशुद्धि या 'प्रदूषण' से मुक्त होकर पुनः सामाजिक-धार्मिक 'शुद्धता' प्राप्त करता है। शुद्धि मूलतः ऊँची जातियों का वह संस्कार था, जिसके माध्यम से वे किसी निषिद्ध संपर्क या अपवित्र परिस्थिति से गुजरने के बाद अपने जातिगत दर्जे को फिर से स्थापित करते थे। योगेंद्र सिकंद और मंजरी काटजू बताते हैं कि शुद्धिकरण ऐसी प्रक्रिया मानी जाती थी, जिसके द्वारा 'गंदगी' हट जाती है और व्यक्ति अपने समुदाय में पुनः स्वीकार्य हो जाता है।

इसी परंपरागत ढाँचे के तहत गाँधी को भी अपने इंग्लैंड प्रवास के बाद जाति-विहित शुद्धिकरण से गुजरना पड़ा। समुद्र पार करना जाति-नियमों का उल्लंघन माना जाता था, इसलिए लौटने पर उनके परिवार

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

के साथ उन्हें बहिष्कार का सामना करना पड़ा। इसके समाधान के लिए पहले नासिक में पवित्र स्नान और फिर राजकोट में जाति-भोज का आयोजन कराया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आरंभिक समय में शुद्धि-संस्कार सवर्ण जाति के लोगों को उनके परंपरागत नियमों के अनुसार पुन: सामाजिक स्वीकृति दिलाने का एक माध्यम था।

आर्य समाज ने भी शुरू में शुद्धि को इसी अर्थ में अपनाया। उसके शुरुआती चरण—लगभग 1885 से 1895 तक—मुख्यत: उन ऊँची जाति के हिंदुओं को पुन: धर्म में लाने पर केंद्रित थे, जो ईसाई या इस्लाम स्वीकार कर चुके थे। किंतु 1900 के बाद आर्य समाज की दृष्टि बदलने लगी। जैसा कि क्रिस्टोफ़ जेफ़रलॉट बताते हैं, इस समय से शुद्धिकरण अभियान का फोकस अस्पृश्य और नीची जातियों को 'पवित्र' बनाकर हिंदू समाज के व्यापक ढाँचे में शामिल करने पर आ गया। यह परंपरागत शुद्धि की अवधारणा से एक बड़ा विचलन था, क्योंकि यहाँ उद्देश्य किसी खोए हुए सवर्ण दर्जे को लौटाना नहीं, बल्कि सामाजिक पायदान के सबसे निचले तबकों को उन्नत करना था। इस प्रकार शास्त्रीय शुद्धि-संस्कार की व्याख्या का 'आधुनिक' रूप सामने आया, जिसमें इसे सामाजिक उत्थान और व्यापक हिंदू एकता का उपकरण बना दिया गया।

ब्रिटिश शासन के दौरान किए गए राजनीतिक और कानूनी सुधारों में जब धार्मिक आधार पर प्रतिनिधित्व को आंशिक मान्यता मिलने लगी, तो सवर्ण हिंदुओं में यह चिंता बढ़ी कि यदि निचली जातियाँ या अस्पृश्य समुदाय ईसाई या इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते हैं, तो इन सुधारों का अधिक लाभ मुसलमानों और ईसाइयों को मिलेगा। इसी भय ने शुद्धिकरण आंदोलन को नया स्वरूप दिया। स्वामी श्रद्धानंद इस खतरे को विशेष रूप से रेखांकित करते हुए कहते थे कि यदि सभी अस्पृश्य मुसलमान बन जाएँ, तो मुसलमान समुदाय न केवल संख्या में हिंदुओं के बराबर हो जाएगा, बल्कि राजनीतिक रूप से भी मजबूत होकर स्वतंत्रता के समय हिंदुओं पर निर्भर नहीं रहेगा।

इसलिए शुद्धिकरण आंदोलन का वास्तविक जोर अस्पृश्यों या नीची जातियों की परिस्थितियों को सुधारने पर कम और उन्हें धर्मांतरण से रोकने पर अधिक था। आर्य समाज इन्हें 'हिंदू ढाँचे' के भीतर रखते हुए राजनीतिक शक्ति-संतुलन बनाए रखना चाहता था। इस प्रकार शुद्धि अभियान सामाजिक उत्थान की तुलना में राजनीतिक गणना और धार्मिक जनसंख्या-चिंता से अधिक प्रेरित था।

हालाँकि, वर्तमान विवेचना का उद्देश्य न तो शुद्धिकरण आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विस्तृत विश्लेषण करना है और न ही इसके कारणों पर प्रश्न उठाना। यहाँ मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि जाति-प्रथा को समाप्त करने के लिए गाँधी की रणनीति की सीमाएँ और उसकी ताकतें किस प्रकार आर्य समाज के शुद्धिकरण आंदोलन से भिन्न थीं—यद्यपि दोनों का घोषित लक्ष्य जातिगत ऊँच-नीच को समाप्त करना ही था।

आर्य समाज ने हिंदू धर्म में व्याप्त अनेक प्रथाओं—मूर्ति-पूजा, अस्पृश्यता, जाति-विभाजन आदि—को वैदिक धर्म की 'अपवृद्धि' मानते हुए यह दावा किया कि ये सब विदेशी शासन और समय के प्रभाव से पैदा हुए विचलन हैं। इसलिए उनका उद्देश्य हिंदू समाज को उसके मूल चातुर्वर्ण पर आधारित आदर्श रूप में वापस लाना था। दयानंद सरस्वती ने चातुर्वर्ण की योग्यता-आधारित व्याख्या प्रस्तुत की, जिसमें ज्ञान और चरित्र के आधार पर ब्राह्मणत्व और शूद्रत्व तय होता है। परंतु आर्य समाज जाति-प्रथा को समाप्त करने

के पक्ष में नहीं था; वह केवल प्राचीन वर्ण–व्यवस्था को 'शुद्ध' रूप में पुन: स्थापित करना चाहता था। इसी कारण शुद्धिकरण आंदोलन भी पवित्रता–अपवित्रता की उसी अवधारणा पर आधारित रहा जो अंतत: जातिगत श्रेष्ठता–हीनता को बनाए रखती थी। आर्य समाज के लिए समस्या अस्पृश्यता और उपजातियों का प्रसार था, न कि स्वयं वर्ण–व्यवस्था।

गाँधी इस बात से सहमत थे कि अस्पृश्यता और जातियों का असंख्य उप–विभाजन हिंदू धर्म की वास्तविक परंपरा नहीं बल्कि उसकी विकृति है। लेकिन उनके लिए समस्या केवल इन 'अपवृद्धियों' को बची–खुची वैदिक व्यवस्था में वापस लाने की नहीं थी। वे मानते थे कि जातिगत अहंकार, श्रेष्ठता–हीनता और सामाजिक दूरी हिंदू धर्म की नैतिक पराजय है। इसलिए सिर्फ अस्पृश्यता हटाना या वर्णों की वैदिक अवधारणा को लौटाना पर्याप्त नहीं था; जब तक सवर्ण हिंदुओं के मन से जातिगत मिथ्या चेतना, गँठे हुए अहंकार और मानवीय असमानता का भाव समाप्त नहीं होगा, तब तक सामाजिक सुधार अधूरा रहेगा।

गाँधी की विकसित होती रणनीतियों—चाहे वह हरिजन–सेवा हो, व्यक्तिगत प्रायश्चित हो, या धार्मिक–नैतिक पुर्नजागरण—का मूल लक्ष्य इसी मिथ्या चेतना से मुक्ति था। इस प्रकार, जहाँ आर्य समाज 'अपवृद्धि से मुक्ति' की बात करता था, वहीं गाँधी का संघर्ष 'मिथ्या चेतना से मुक्ति' के लिए था, जो जातिगत व्यवस्था की नींव पर चोट करता था और व्यापक नैतिक परिवर्तन की ओर संकेत देता था।

आर्य समाज के शुद्धिकरण आंदोलन में अस्पृश्यों या दलित समुदायों को पहले 'अशुद्धता' से मुक्त किया जाता था और फिर उन्हें हिंदू चातुर्वर्ण व्यवस्था में स्थान दिया जाता था। इस प्रक्रिया के बाद उनसे अपेक्षा होती थी कि वे सवर्ण परंपराओं—जनेऊ, गायत्री मंत्र, द्विज संस्कारों, और ऊँची जातियों की जीवन–शैली—की नकल करें। आर्य समाज ने शिक्षा, सहकारी समितियों, और पानी के अधिकार जैसी पहलें भी चलाईं, परंतु अधिकतर मामलों में सांस्कृतिक और धार्मिक रीति–रिवाजों को प्राथमिकता मिली, जबकि उनके आर्थिक और राजनीतिक जीवन में वास्तविक परिवर्तन नगण्य रहा। इस प्रकार शुद्धिकरण आंदोलन ने अस्पृश्यों को केवल प्रतीकात्मक रूप से 'ऊपर उठने' का अवसर दिया, जिसे समाजशास्त्रीय रूप से 'संस्कृतिकरण' कहा जाता है—जहाँ स्थिति बदलती है, पर संरचना नहीं।

गाँधी ने इस पूरी प्रणाली को मूल रूप से अस्वीकार किया। उनके लिए समस्या यह नहीं थी कि शुद्धिकरण अस्पृश्यों के वास्तविक उत्थान में असफल रहा, बल्कि यह कि उसका आधार ही जातिगत श्रेष्ठता और हीनता के विचार को संरक्षित करता था। समाज में 'ऊपर चढ़ने' का यह तर्क न तो जाति–प्रथा की नैतिक नींव को चुनौती देता था, और न ही इसे बदलने की दिशा में कोई ठोस कदम उठाता था। उलटे, यह व्यवस्था सवर्ण मूल्यों को श्रेष्ठ दिखाकर जातिगत विषमताओं की वैधता को और मजबूत करती थी। गाँधी की दृष्टि में यह प्रक्रिया मानसिक क्रांति के बजाय सामाजिक अनुकरण पर आधारित थी, जिससे जाति–व्यवस्था की जड़ें और गहरी होती थीं।

जैसा कि एम.एन. श्रीनिवास बताते हैं, संस्कृतिकरण की यह गतिशीलता केवल 'स्थितीय बदलाव' लाती है—एक जाति ऊपर जाती है, दूसरी नीचे—परंतु सम्पूर्ण जाति–व्यवस्था की असमान संरचना जस की तस बनी रहती है। इस तरह, जहाँ आर्य समाज का मॉडल सामाजिक सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने को प्रोत्साहित करता था, वहीं गाँधी इसे जातिगत मिथ्या चेतना को और पुख़्ता करने वाला मानकर अस्वीकार करते थे।

गाँधी ने शुद्धिकरण आंदोलन (शुद्धि) के तर्क को इसलिए अस्वीकार किया, क्योंकि उसके अनुसार जाति-प्रथा की जड़ में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं किया जा रहा था। शुद्धि आंदोलन केवल कुछ जातियों या अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने का वादा तो करता था, पर जाति-आधारित शुद्ध-अशुद्ध की मूल धारणाओं को चुनौती नहीं देता था। इसलिए यह जाति-ढाँचे को तोड़ पाने में असफल रहा। इसके विपरीत, गाँधी ने ऐसा मार्ग अपनाया जिसे 'नीचे की ओर बढ़ना' कहा जा सकता है अर्थात सवर्ण हिंदुओं को अपनी मानसिकता बदलने, अपने भीतर के शुद्ध-अशुद्ध संबंधी पूर्वाग्रहों को छोड़ने और व्यक्तिगत उदाहरण, समझाने-बुझाने व नैतिक आग्रह के माध्यम से आत्मशुद्धि करने पर जोर दिया।

गाँधी का मानना था कि असली शुद्धि सवर्ण हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यता के दाग को स्वयं धोने में है, न कि अस्पृश्यों को ऊपर उठाकर उन्हें 'ऊँचे दर्जे' में लाने में। इसलिए उन्होंने अस्पृश्यों के उपनयन संस्कार का विचार भी ठुकरा दिया—क्योंकि इससे यह संकेत मिलता है कि वे किसी 'निचले स्तर' पर हैं।

उनके अनुसार सवर्णों को अपनी श्रेष्ठता-भावना त्यागकर कथित अस्पृश्यों के साथ बराबरी के स्तर पर आना होगा। इसी कारण गाँधी के लिए शुद्धिकरण आंदोलन जाति-प्रथा की मूल समस्या को हल करने के बजाय केवल उसके भीतर सीमित सामाजिक स्वीकृति देने वाला एक अपूर्ण उपाय था।

आर्य समाज और गाँधी, दोनों अस्पृश्यता को समाप्त करना चाहते थे, पर दोनों की दिशा और मक़सद अलग थे। आर्य समाज के लिए यह मुद्दा जातिगत बराबरी से अधिक हिंदू धर्म के गौरव, आध्यात्मिक श्रेष्ठता और आत्मविश्वास की पुर्नस्थापना से जुड़ा था। ईसाइयत और इस्लाम से बढ़ती चुनौतियों के बीच वे हिंदुओं में आत्मगौरव जगाना चाहते थे। दयानंद और लाजपत राय दोनों का मत था कि हिंदुओं को अवसाद से निकालकर अपनी विरासत पर गर्व करना चाहिए। इसी कारण आर्य समाज सवर्ण हिंदुओं को कुछ पुरानी परंपराएँ छोड़कर अपने 'गौरवशाली अतीत' की ओर लौटने का संदेश देता था। बंकिम चंद्र पाल ने भी इसी आक्रामक आत्मविश्वास को उपयोगी बताया था।

इसके विपरीत, गाँधी की दृष्टि में जातिगत श्रेष्ठता का यही भाव अस्पृश्यता और विषमता का मूल कारण था। इसलिए उन्होंने आर्य समाज के 'गौरव-निर्माण' वाले तरीके को अस्वीकार किया। गाँधी का तरीका 'नीचे की ओर जाना' था अर्थात सवर्ण हिंदुओं को अपनी जातिगत श्रेष्ठता, शुद्ध-अशुद्ध के भ्रम और सामाजिक अहंकार को छोड़कर स्वेच्छा से सादगी और बराबरी अपनानी चाहिए।

गाँधी ने सवर्णों के सामने गौरव नहीं, बल्कि शर्म, अपराध-बोध और प्रायश्चित का भाव रखा। वे कहते थे कि अस्पृश्यता सवर्ण हिंदुओं का 'पाप' है, और इसका प्रायश्चित यह है कि वे अस्पृश्यों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्थान के लिए सक्रिय रूप से काम करें।

गाँधी की रणनीति को आर्य समाज और अंबेडकर के दृष्टिकोण से तुलना करने पर उसकी सीमाएँ और उसकी प्रासंगिकता स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी पहली सीमा यह थी कि वे जाति को मुख्यत: मानसिक अवस्था—श्रेष्ठता-हीनता के भ्रम और शुद्ध-अशुद्ध की धारणाओं—के रूप में देखते रहे, जबकि जाति एक कठोर आर्थिक और राजनीतिक ढाँचा भी थी। उन्होंने मानसिक परिवर्तन की योजना तो बनाई, पर आर्थिक और सत्ता-संबंधी असमानताओं को तोड़ने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम नहीं तैयार कर सके।

दूसरी सीमा यह रही कि वे राज्य और आधुनिकीकरण पर अविश्वास रखते थे। जबकि भारतीय

समाज में बड़े बदलाव—समान शिक्षा, अवसर, और राजनीतिक शक्ति—राज्य की सक्रिय भूमिका और आधुनिक संस्थाओं के बिना संभव नहीं थे। गाँधी ने इस दिशा में दीर्घकालिक योजना नहीं बनाई।

तीसरी सीमा यह थी कि उनका पूरा ध्यान सवर्ण हिंदुओं के नैतिक परिवर्तन पर था। अस्पृश्य समुदाय की अपनी राजनीतिक भूमिका, उसकी बोलने की शक्ति और उसके प्रतिनिधित्व को उन्होंने पर्याप्त स्थान नहीं दिया। इसीलिए उनकी रणनीति संरचनात्मक बदलाव की बजाय नैतिक सुधार तक सीमित रह गई।

इसके बावजूद उनकी ताक़त यह थी कि उन्होंने जाति के प्रश्न को सार्वजनिक बहस में लाकर सवर्ण समाज को अपनी नैतिक जिम्मेदारी का सामना करने के लिए बाध्य किया। आज भी उनकी रणनीति इसलिए प्रासंगिक है कि जाति केवल कानून से नहीं, बल्कि मनुष्य की मानसिकता से भी टूटती है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि सिर्फ नैतिक परिवर्तन पर्याप्त नहीं होता; आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ढाँचों में बड़े बदलाव भी अनिवार्य हैं।

गाँधी ने जाति-प्रथा के विरुद्ध संघर्ष में आदर्श व्यक्तियों और सवर्ण हिंदुओं की नैतिक जागृति पर भरोसा किया, और समझाने-बुझाने तथा व्यक्तिगत उदाहरण जैसे तरीकों का सहारा लिया। लेकिन ये तरीके आम जन तक सीमित रूप से ही असर डाल सके, क्योंकि गाँधी राज्य शक्ति का उपयोग करने के पक्ष में नहीं थे। आधुनिकता, औद्योगीकरण और शहरीकरण को लेकर उनकी आशंकाएँ भी उनकी रणनीति को सीमित करती रहीं, जबकि यही प्रक्रियाएँ हिंदू समाज में जातिगत असमानताओं और आर्थिक-सामाजिक गैरबराबरी को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती थीं।

गाँधी की रणनीति की एक और सीमा यह थी कि इससे अस्पृश्यों को सक्रिय शक्ति के रूप में आगे आने का अवसर नहीं मिला। उनकी पद्धति स्वभावतः पितृसत्तात्मक थी, जिसमें अस्पृश्य एक निष्क्रिय पक्ष बनकर रह जाते थे, जबकि सवर्णों से प्रायश्चित और सुधार की अपेक्षा की जाती थी। विडंबना यह है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर जोर देने वाले गाँधी अस्पृश्यों के संगठन, नेतृत्व-निर्माण और आत्मविश्वास को विकसित करने की ठोस योजना नहीं बना सके। तीन दशक लंबे संघर्ष के बावजूद वे अंबेडकर, नेहरू या पटेल जैसे प्रभावशाली दलित नेता तैयार नहीं कर पाए और न ही संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए स्पष्ट दिशा छोड़ पाए।

फिर भी, हर बार गाँधी ने अस्पृश्यता हटाने की अपनी माँग को किसी संस्थान या ठोस उदाहरण के साथ जोड़ा। 1920 में अस्पृश्य बच्चों के स्कूल-प्रवेश की वकालत करते हुए उन्होंने गुजरात विद्यापीठ स्थापित किया। मंदिर-प्रवेश का सिद्धांत सामने रखते हुए उन्होंने कांग्रेस से विशेष समिति गठित कराई, और 1933 में सामाजिक, शैक्षणिक व आर्थिक उत्थान को अस्पृश्यता-निरोध की शर्त बताते हुए हरिजन सेवक संघ बनाया। इस प्रकार उनकी लड़ाई सीमाओं के बावजूद संस्थागत प्रयासों से जुड़ी रही।

गाँधी के संघर्ष के इतिहास से स्पष्ट होता है कि उनकी रणनीति के मूल स्वरूप और दिशा के बारे में वास्तविक निर्णय सिर्फ उन्हीं के पास सुरक्षित रहते थे। आंदोलन कितने समय तक स्कूल-प्रवेश या मंदिर-प्रवेश जैसे मुद्दों पर टिकेगा तथा कब अन्य विषयों को उठाया जाएगा—यह सब गाँधी स्वयं तय करते थे। कौन-सा मुद्दा प्राथमिक है, कौन-सा नहीं; किन तरीकों को अपनाया जाए और किन्हें नहीं—इन सब पर

नियंत्रण भी उन्हीं का था। उन्होंने एक बड़ी स्वयंसेवक-सेना तैयार तो की, पर अधिकांश स्वयंसेवक स्वतंत्र निर्णय लेने वाले व्यक्तित्व नहीं बने। परिणामस्वरूप, संकट की अवस्था में उनकी निर्भरता गाँधी पर इतनी अधिक थी कि उनके न रहने पर आंदोलन की दिशा अस्पष्ट हो जाती और उसकी शक्ति क्षीण पड़ जाती।

इस रणनीति की एक और कमजोरी उसकी धीमी गति थी, जो भारत की विशाल आबादी, व्यापक भूभाग और सदियों पुराने धार्मिक-सामाजिक पूर्वाग्रहों की तुलना में अपर्याप्त सिद्ध होती थी। व्यक्तिगत उदाहरण, समझाने-बुझाने और नैतिक अपील जैसे साधनों से इतने गहरे पूर्वाग्रहों को हटाना लगभग असंभव था, विशेषकर तब, जब गाँधी गाँवों के पारंपरिक जीवन को बदले बिना जातिगत दृष्टिकोण सुधारना चाहते थे। औद्योगीकरण और शहरीकरण को बढ़ावा न देने से वह प्रक्रिया और भी धीमी हो गई, जो जाति-आधारित सोच को तेजी से बदल सकती थी।

फिर भी, उनकी रणनीति के महत्त्वपूर्ण गुण भी थे। सबसे बड़ी बात यह कि उनके तरीके ने सवर्णों और अस्पृश्यों के बीच प्रत्यक्ष टकराव को टाल दिया, और दोनों के बीच संवाद तथा आपसी समझ को बनाए रखा। यह दृष्टिकोण उस समय विशेष रूप से सार्थक था, जब राष्ट्रीय एकता ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष के लिए अनिवार्य थी। अंबेडकर की जाति-विरोधी पहल दलितों के अधिकारों के संघर्ष में अधिक प्रभावशाली अवश्य थी, लेकिन उसने समाज के भीतर गहरे मतभेदों को भी उजागर किया। इसके विपरीत, गाँधी का मार्ग समाज को जोड़ने का प्रयास करता था, जिससे व्यापक सामाजिक सौहार्द बना रहे।

समकालीन भारत में भी उनकी दृष्टि इसलिए महत्त्वपूर्ण बनी हुई है कि विभिन्न जाति-समूहों के बीच आरक्षण और प्रतिकारी भेदभाव के कारण बढ़ते तनाव समाज की एकता व सामंजस्य के लिए चुनौती बन रहे हैं। ऐसे में एक ऐसा दृष्टिकोण, जो परस्पर कर्तव्य, जिम्मेदारी और समझ पैदा करे, सामाजिक शांति तथा जातिगत असमानताओं को दूर करने के लिए आवश्यक बना रहता है।

गाँधी की रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण गुण यह था कि उसने हिंदू समाज में जमी हुई जातिगत विषमताओं और श्रेष्ठता-हीनता की मानसिकता को भीतर से कमजोर किया, जबकि उस समय प्रचलित अन्य तरीके इसमें सफल नहीं हो पाए। आर्य समाज का शुद्धि-आंदोलन यद्यपि हिंदू एकता के विस्तार की बात करता था, पर वह शुद्ध-अशुद्ध के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण जातिगत वर्गीकरण को और मजबूत करता चला गया और अस्पृश्यों को ऊँचा दर्जा देने का उसका तर्क अपनी ही बुनियाद के कारण निष्प्रभावी पड़ गया। इसी प्रकार, अंबेडकर का आंदोलन दलित अधिकारों की दृष्टि से अत्यंत सार्थक होते हुए भी, अस्पृश्यों की एक अलग दबे-कुचले समूह के रूप में राजनीतिक पहचान को केंद्र में रखता था, जिससे सवर्णों और दलितों के बीच दूरी और बढ़ी।

इसके विपरीत, गाँधी का तरीका सवर्ण हिंदुओं को धीरे-धीरे उन विश्वासों से दूर ले गया, जो शुद्धता और अशुद्धता की धारणाओं पर टिके थे। वह उन्हें यह समझाने का निरंतर प्रयास करते रहे कि वे उन पारंपरिक शारीरिक कार्यों की गरिमा को स्वीकार करें, जिन्हें अस्पृश्य जातियों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार उनकी रणनीति सामाजिक पूर्वाग्रहों की जड़ों पर प्रहार करती थी और मानसिकता के स्तर पर बदलाव लाने की कोशिश करती थी।

यह दृष्टिकोण आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि जातिगत श्रेष्ठता-हीनता के कई पुराने

पूर्वाग्रह अब भी समाज में विद्यमान हैं और दलित उत्थान से संबंधित नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न करते हैं। गाँधी की रणनीति इन प्रवृत्तियों को भीतर से बदलने का मार्ग प्रस्तुत करती है, इसलिए समकालीन परिप्रेक्ष्य में भी उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शुद्धि और संगठन, हरि किशन वर्मा, राजपुताना प्रेस, अजमेर 1941*
2. *नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1983*
3. *ग्रेट सोल : महात्मा गांधी एण्ड हिल स्ट्रगल विथ इंडिया, लेली वेल्ड जोसेफ, न्यूयार्क, 2011*
4. *महार, पॉलिन एम., Changing Religious Practices of an Untouchable Caste Economic Development and Cultural Change, खंड 8, संख्या 3, 1960, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, पृष्ठ 282।*
5. *पणिक्कर, के. एन., Social-Religious Reforms and the National Awakening In India's Struggle for Independence, नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स, 1988*
6. *श्रीनिवास, एम. एन., Social Change in Modern India, बर्कले और लॉस एंजिलिस: यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, 1966*
7. *महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की प्रासंगिकता, दयानन्द वैदिक शोधपीठ अजमेर, 1998*
8. *दयानन्द एण्ड आर्यसमाज, रोम्या शैलाँ, सार्वदैशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 1983*
9. *महात्मा गाँधी का समाज दर्शन, महादेव प्रसाद, हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ़, 1973*